अक्टूबर-नवंबर में हिंदी "विपश्यना" पत्रिका में प्रकाशित

धम्मवाणी

अभिञ्ञेय्यं अभिञ्ञातं, भावेतब्बं च भावितं।
पहातब्बं पहीनं मे, तस्मा बुद्धो'स्मि ब्राह्मण॥
– भगवान बुद्ध सेल सुत्त –११

जिसे जानना था उसे जान लिया, जिसे अनुभव करना था उसे अनुभवित कर लिया, जिसे त्यागना था उसे त्याग दिया। हे ब्राह्मण! इसलिए मैं बुद्ध हूँ।

बुद्ध और धर्म

[७]

भगवान गौतम बुद्ध के जीवनकाल की एक घटना।

तब भगवान राजगृह के वेणुवन में विहार कर रहे थे। सभिय नाम का एक परिव्राजक अपनी शंकाओं का समाधान करने के लिए अनेक आचार्यो के पास गया पर असंतुष्ट ही रहा। अन्ततः भगवान गौतम बुद्ध से मिलकर उनके समक्ष अपने प्रश्न रखे। उन प्रश्नों में एक प्रश्न था।

बुद्धो कथं पवुच्चति ? याने बुद्ध किसे कहते हैं?

भगवान ने उत्तर दिया : –

कप्पानि विच्चेय्य केवलानि तृष्णा के संपूर्ण क्षेत्र का विश्लेषण करके, **संसार दुभयं चुतुपपातं** जिसने संसारचक्र [प्रपंच] की उत्पत्ति और विनाश दोनों को जान लिया है। **विगतरज मनङ्गणं विसुद्धं** जो चित्तमैल से विमुक्त हो गया है। जो विशुद्ध विमल है।

पत्तं जातिक्खयं जिसने जन्म-क्षय की अवस्था प्राप्त कर ली है। तमाहु बुद्धन्ति । उसे बुद्ध कहते हैं।

परिव्राजक सभिय को यह व्याख्या बहुत भायी। ऐसा व्यक्ति कोई भी क्यों न हो, बुद्ध ही कहलायेगा। बुद्ध की कैसी गुणवाचक सार्वजनीन धर्ममयी व्याख्या।

परिव्राजक सभिय ने इसी प्रकार भिक्खु, ब्राह्मण, श्रमण, परिव्राजक, श्रेत्रिय, आर्य, पंडित, वेदज्ञ आदि शब्दों की भी सही व्याख्या जाननी चाही। भगवान ने इनकी भी गुणवाचक सार्वजनीन धर्ममयी व्याख्याएं की, जब कि यह सभी शब्द लोकिय क्षेत्र में अधिकांशतः संप्रदायवाचक ही हो गए थे। भगवान सम्यक् सम्बुद्ध ने इन श्रेष्ठ गुणवाचक शब्दों को संप्रदायवादी दलदल के बाहर निकाला और इनकी सांप्रदायिकता विहीन शुद्ध धार्मिक व्याख्या की।

सांप्रदायिक व्याख्या होती तो भिन्न भिन्न वेश-भूषा, जाति, वर्ण, गोत्र, कर्मकांड और बुद्धि-कल्पनाजन्य दार्शनिक मत मतांतरों पर आधारित होती। जबकि शुद्ध धर्ममयी व्याख्या केवल सद्गुणों पर आधारित है।

सभिय इन व्याख्याओं से अत्यंत प्रभावित हुआ और भगवान के शासन में याने उनकी शिक्षा में प्रव्रजित हुआ।

जो भी बुद्ध होंगे, वह धर्मवादी ही होंगे, संप्रदायवादी नहीं । उनकी प्रसिद्धि इन शब्दों में नहीं होगी कि वह –

संघीचेव गणी च गणाचरियो च ञातो यसस्सी तित्थकरो।

बल्कि इन शब्दों में होगी : –

इतिपि सो भगवा वह समस्त राग, द्वेष और मोह को भग्न करके मुक्ति के ऐश्वर्य का जीवन जीते हैं, इस माने में भगवान हैं।

अरहं वह अहंकार ममंकार जैसे सभी चित्तमैलरूपी दुश्मनों का हनन कर चुके होते हैं, इस माने में अर्हंत हैं।

सम्मा सम्बुद्धो भली प्रकार से स्वयं अपने प्रयत्नों द्वारा याने स्वयंभू बुद्ध हैं इस माने में सम्यक् सम्बुद्ध हैं।

विज्जाचरणसम्पन्नो वह केवल बुद्धि के स्तर पर ही नहीं बल्कि आचरण के स्तर पर भी ज्ञान की संपन्नता प्राप्त कर चुके हैं, इस माने में विद्याचरण संपन्न हैं।

सुगतो उनकी कायिक, वाचिक, मानिसिक सभी गतियां शुद्ध हैं, कुशल हैं, इस माने में सुगत हैं।

लोकविदु वह अनुभूति के स्तर पर सारे लोकों की यथावत जानकारी कर चुके हैं, इस माने में लोकविदु हैं।

अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथी जैसे बिगड़ैल घोड़ों को सारथी

सुधार लेता है ऐसे ही बिगड़ैल लोगों को सुधार लेने में अनुपम कुशल सारथी हैं।

सत्था देवमनुस्सानं जो देवताओं के और मनुष्यों के ,राजा और प्रजा के शास्ता हैं, मार्गदर्शक हैं।

बुद्धो भगवाति । ऐसे हैं बुद्ध भगवान!

ऐसे गुण जिस किसी व्यक्ति में हों, वह बुद्ध ही है। कोई बुद्ध है तो उसमें ऐसे गुण होंगे ही। बुद्ध कोई भी बन सकता है। जिसकी बोधि जागी और पूर्णतया परिपुष्ट हुई वही बुद्ध हुआ। यद्यपि इस अवस्था तक पहुँचने के लिए प्रभूत पराक्रम पुरुषार्थ करना होता है पर ऐसा पुरुषार्थ करके कोई भी सफल हो सकता है। कोई प्रादेशिक या सांप्रदायिक प्रतिबंध नहीं होता।

बुद्ध कोई व्यक्तिवाचक या जातिवाचक या संप्रदायवाचक शब्द नहीं है। बुद्ध के लिए और भी अनेक गुणवाचक विशेषण, संबोधन शब्द इस्तेमाल होते हैं। जैसे – भगवान, जिन, महावीर, सर्वज्ञ, तथागत, दशबल, क्षीणाश्रव, महाकारुणिक , वीतराग, वीतद्वेष, वीतमोह, वीततृष्णा, धर्मराजा, सत्यदर्शी, निर्वाणदर्शी, सच्चनाम, धर्मकाय, धर्मभूत, ब्रह्मकाय, ब्रह्मभूत इत्यादि इत्यादि। ऐसे सभी शब्द गुण, धर्म, स्वभाववाचक ही हैं। इसलिए सार्वजनीन हैं। कोई भी शब्द किसी भी संप्रदाय से नहीं बँधता।

ऐसा बुद्ध जब कुछ सिखाता है तो धर्म ही सिखाता है। शुद्ध सार्वजनीन धर्म। संप्रदायवाद से, जातिवाद से, कल्पनाजन्य दार्शनिक वाद से सर्वथा विमुक्त। सभी बुद्ध यही उपदेश देंगे : –

इति सीलं इति समाधि इति पञ्ञा, यह शील है, यह समाधि है, यह प्रज्ञा है।

सील परिभावतो समाधिमहप्फलो होति महानिसंसो । शील परिभावित कर लेने से याने पूरी तरह अभ्यास में उतार लेने से समाधि महाफलदायिनी, महाकल्याणकारिणी होती है।

समाधि परिभावतो पञ्ञामहप्फलो होति महानिसंसो । समाधि परिभावित कर लेने से याने पूरी तरह अभ्यास में उतार लेने से प्रज्ञा महाफलदायिनी, महाकल्याणकारिणी होती है।

पञ्ञापरिभावतो चित्त सम्मदेव आसवेहि विमुच्चति । प्रज्ञा परिभावित कर लेने से याने पूरी तरह अभ्यास में उतार लेने से चित्त आस्त्रवों से पूर्णतया विमुक्त हो जाता है।

याने शील, समाधि और प्रज्ञा का अभ्यास करें जिससे कि विकारों से पूर्णतया विमुक्त हों। शील, समाधि, प्रज्ञा भी सार्वजनीन और इनके परिणामस्वरूप प्राप्त होनेवाली विमुक्ति भी सार्वजनीन। सांप्रदायिकता का कहीं नामोनिशान नहीं।

सभी बुद्ध यही सिखाते हैं। भगवान गौतम बुद्ध ने भी यही सिखाया। क्योंकि वह स्वयं इसे ही सीखकर बुद्ध बने।

सीलं समाधि पञ्ञा च विमुत्ति च अनुत्तरा। अनुबुद्धा इमे धम्मा गौतमेन यसस्सिना ॥

शील, समाधि और प्रज्ञा अनुत्तर विमुक्ति इन्हीं धर्मो का यशस्वी गौतम ने अनुबोध किया। अतः इन्हीं शुद्ध, सनातन, सार्वजनीन धर्मो का उपदेश दिया।

गौतम बुद्ध के पूर्व भी जो बुद्ध हुए उन्होंने इन्हीं धर्मो की स्वयं बोधि प्राप्त की और इन्हीं की शिक्षा दी। इसी प्रकार उनके पश्चात् भी जो बुद्ध होंगे वे भी यही बोधि प्राप्त करेंगे और यही शिक्षा देंगे।

कोई भी बुद्ध होगा तो इन सनातन सच्चाइयों को अनुभूतियों के स्तर पर जान लेगा कि छहों इन्द्रियों के अपने अपने विषय जब संबंधित इंद्रियों के संपर्क में आते हैं और उन्हें अनुकूल अथवा प्रतिकूल मान लिया जाता है तो सुखद या दुखद संवेदना होती है। सुखद हो तो उसके प्रति राग की याने उसे समेटे रखने की तृष्णा और दुखद हो तो उसके प्रति द्वेष की याने उसे दूर करने की तृष्णा जागती है। इस तृष्णा से ही अनेक अन्य प्रकार के विकार जागते हैं और हर तृष्णा का विकार दुःख ही पैदा करता है। यों तृष्णा का स्वभाव पुष्ट होते होते भवदुःखचक्र गतिमान हो उठता है। शरीर और चित्त पर उत्पन्न होनेवाली इन्हीं तृष्णाजन्य संवेदनाओं को तटस्थभाव से देखने पर यह स्वभाव टूटने लगता है। भवचक्र के स्थान पर भवमुक्तिचक्र याने धर्मचक्र चलने लगता है। और यों अभ्यास करते करते साधक सारे विकारों से विमुक्त हो जाता है। इसी के लिए शील, समाधि और प्रज्ञा का अभ्यास किया जाता है। यह सनातन नियम है। याने सनातन धर्म है।

संसार में कोई व्यक्ति बुद्ध बने या न बने, यह नियम तो कायम रहता ही है : **इमस्मिं सति इदं होति, इमस्मिं असति इदं न होति** ।

इस कारण के होने से यह परिणाम होगा ही। इस कारण के नहीं होने से यह परिणाम नहीं होगा।

मानस पर तृष्णाजन्य विकार होंगे तो दुःख होगा ही। यह विकार न रहें तो दुःख अपने आप दूर हो जायेगा।

कोई बुद्ध इन नियमों को बनाता नहीं। कोई बुद्ध इनमें परिवर्तन करता नहीं। कर भी नहीं सकता। बुद्ध हुआ माने प्रकृति के इन सनातन नियमों को प्रत्यक्ष अनुभूति द्वारा जान गया और जानकर स्वयं विकार-विमुक्त हो गया। ऐसा व्यक्ति कोई भी हो, यही सिखायेगा कि शील, समाधि, प्रज्ञा द्वारा दुःखसमुदय के कारणों राग-द्वेष आदि को नष्ट कर दो और दुःखविमुक्ति की अवस्था का साक्षात्कार कर लो।

इसके अतिरिक्त और वह क्या सिखायेगा भला? धर्म तो सनातन एक ही है जो कि सार्वजनीन है। कोई भी बुद्ध इसी धर्म को सिखाता है। वह किसी सांप्रदायिक या दार्शनिक

उलझनों में लोगों को नहीं उलझाता।

बुद्ध हुआ तो भगवान हुआ याने राग-द्वेष और मोह को क्षय करकेविमुक्त हुआ। ऐसा भगवान जो धर्म सिखाता है वह सार्वजनीन होता है और उसके यह सनातन गुण होते हैं।

स्वाक्खातो – धर्म सुआख्यात होता है। अच्छी प्रकार समझाया गया है। उसमें लालबुझक्कड़ों वाली कोई पहेली-बुझौवल नहीं होती। रहस्यवादिता की कोई उलझावन नहीं होती।

संदिट्ठिको – धर्म सदा सांदृष्टिक होता है। उसमें मिथ्या कल्पना को कोई स्थान नहीं होता। हर कदम सांदृष्टिक याने प्रत्यक्ष अनुभूति पर उतरने वाले सत्य के सहारे ही साधक आगे बढ़ता है।

अकालिको – यों सत्य के सहारे आगे बढ़ने पर उसे तत्काल फल मिलता है।

एहिपस्सिको – ऐसा सार्वजनीन धर्म जो लोगों को स्वयं सच्चाई देखने के लिए आह्वान करताहै, आमंत्रित करताहै।

ओपनेय्यिको – जो कदमकदमपूर्णमुक्त अवस्था तक ले जानेवाला होता है।

पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूहि – जिसे प्रत्येक समझदार आदमी को स्वयं अनुभव करना चाहिए। केवलबुद्धि या श्रद्धा के स्तर पर मान लेने मात्र से बात नहीं बनती।

बस शुद्ध धर्म की यही सार्वजनीन व्याख्या है। धर्म शब्द के साथ कोई संप्रदायवाचक अथवा जातिवाचक अथवा दार्शनिक-मान्यतावाचक पुछल्ला नहीं लगता। यदि कोई विशेषण लगता भी है तो सार्वजनीन ही – जैसेः **एसधम्मो सनन्तनो** – ऐसा है यह सनातन धर्म। अथवा

अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो – आर्य धर्म याने ऐसा धर्म मार्ग जिस पर चलकर कोई भी व्यक्ति आर्य बन सके, निर्मलचित्त बन सके, संत बन सके।और इस मार्ग के जो आठ अंग हैं वे भी एकदम सार्वजनीन ही। कहीं सांप्रदायिकता का नामोशिन नहीं । वाणी शरीर और आजीविका के कर्म सम्यक् हों, यही शील है । प्रयत्न, सजगता और समाधि सम्यक् हो यही समाधि है। चिंतन और दर्शन सम्यक् हो यही प्रज्ञा है।

सम्यक् हो यानी सही हो। सत्य पर आधारित हो, प्रत्यक्ष अनुभूति पर आधारित हो। इसमें सांप्रदायिकता की कोई बात नहीं। सार्वजनीन है, सभी आसानी से पालन कर सकते हैं। जाति, वर्ण, संप्रदाय अथवा देश काल की कहीं कोई दीवारें नहीं।

धर्म के मार्ग पर बिना कल्पना के, सत्य के सहारे सहारे चलना होता है। इसीलिए इसे सद्धर्म कहते हैं।

धर्म के मार्ग पर जो जो चले वही अपने मन के मैल उतारकर शुद्ध हो जाता है। इसलिए इसे **शुद्ध धर्म** कहते हैं, **विशुद्धि धर्म** कहते हैं। विशुद्धि मार्ग कहते हैं।

धर्म के मार्ग पर जो चले, वही राग, द्वेष आदि विकारों से विमुक्त हो जाता है। सभी दुःखों से मुक्त हो जाता है। अतः इसे **विमुक्ति धर्म** कहते हैं। विमुक्ति मार्ग कहते हैं। दुःखनिरोधनी प्रतिपदा कहते हैं।

धर्म के मार्ग पर जो चले वही आर्य बन जाता है याने दुर्जन से सज्जन संत बन जाता है। इसीलिए इसे आर्यमार्ग कहते हैं, **आर्यधर्म** कहते हैं।

धर्म के मार्ग पर जो चले, उसका चित्त स्वच्छ हो जाता है । कालिमा दूर हो जाती है। इसलिए इसे **शुक्ल धर्म** कहतेहैं।

धर्म के मार्ग पर जो चले वही निर्वाण की अग्र अवस्था सहज प्राप्त कर लेता है। इस माने में इसे **अग्र धर्म** कहते हैं।

बस धर्म के लिए ऐसे ही विशेषण प्रयुक्त होते हैं और होने चाहिए। कोई संप्रदायवाचक, जातिवाचक विशेषण प्रयुक्त नहीं होते, न होने चाहिए।

इसी प्रकार राग-द्वेष भग्न कर भगवान बने बुद्ध की धर्मदेशना श्रवणकर जो लोग धर्म धारण करते हैं, धर्म में परिपुष्ट होते हैं, मुक्ति की पहली श्रोतापन्न अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं या उससे आगे की सगदागामी, अनागामी अथवा अंतिम अर्हंत अवस्था को प्रप्त हो जाते हैं तो वह भगवान के श्रावक संघ कहलाते हैं। चाहे वह भिक्षु हों या भिक्षुणियां, गृहस्थ उपासक हों या उपासिकाएं।जो लोग इन चारों आर्य अवस्थाओं में से पहली अवस्था को भी न पा सके हों, पर उसके लिए गंभीरतापूर्वक प्रयत्नशील हों, शील का पालन करते हुए समाधि को दृढ़ करतेहों और विपश्यना द्वारा प्रज्ञा को पुष्ट करने में सचेष्ट हों, ऐसे **सुपटिपन्नो, उजुपटिपन्नो, ञायपटिपन्नो सामीचिपटिपन्नो** याने अच्छे ऋजु सत्य और सम्यक् पथ के पथिक हों वे भी संघ कहलाने योग्य हैं।

परन्तु इन्हें छोड़कर अन्य कोईसंघ कहलानेयोग्य नहीं। कोई बुद्ध होगा, भगवान होगा तो दुश्शील, दुराचारी, अधर्मचारी, चंचलचित्त, दुष्प्रज्ञ व्यक्ति को अपना श्रावकसंघ कदापि नहीं स्वीकार करेगा।

याने संघ भी वही जो धर्मनिष्ठ हो, अन्यथा नहीं। ऐसा व्यक्ति किसीजाति, गोत्र, वर्ण, संप्रदाय, या देश-प्रदेश का हो वह आर्य है, संत है। धर्मनिष्ठ है तो पूज्य है, आदरणीय है, पुण्यबीज बोने के लिए उपजाऊ क्षेत्र ही है। बुद्ध और धर्म की ही भांति संघ के साथ भी जातिवाचक या संप्रदायवाचक शब्द नहीं जुड़ सकता,न ही जुड़ना चाहिए। केवलगुणवाचक शब्द ही जुड़ते हैं। जैसे – **आहुनेय्यो** [आह्वान करने योग्य] **पाहुनेय्यो** [पाहुना बनाने योग्य] **दक्खिणेय्यो** [दक्षिणा योग्य] **अञ्जलि करणीयो** [अंजलिबद्ध प्रणाम करने योग्य] **अनुत्तरं**

पुञ्ञक्खेत्तं [सर्वश्रेष्ठ पुण्यक्षेत्र] **दन्तो सन्तो** [दान्त, शांत] **विरजो विमलो** [विरज-विमल] **निप्पपञ्चो** [निष्प्रपंच] आदि।

बुद्ध धर्म और संघ तीनों जाति-संप्रदाय की सीमा से परे होते हैं तभी परिशुद्ध कहे जाते हैं, तभी अभिनंदनीय होते हैं। इनके प्रति श्रद्धा और कृतज्ञता का भाव जगाने के लिए किसी संप्रदाय में दीक्षित होने की आवश्यकता नहीं होती। आवश्यकता धर्म में दीक्षित होने की है। लाभ उसी में है।

जातिवाद और संप्रदायवाद से दूर रहकर शुद्ध धर्म में परिपुष्ट होकर आओ! हम अपना कल्याण मंगल साध लें।

कल्याणमित्र,

स. ना. गो.

दोहे धर्म के

बुद्ध होय तो धरम का, शुद्ध पंथ दिखलाय।
सम्प्रदाय के जाति के, बाड़े बँधन न पांय॥

दर्शन वाद विवाद का, रहे न सिर पर भार।
सत्य देखते देखते, दिखे सत्य का सार॥

दर्शन जब सम्यक् बने, तो सम्यक् हो ज्ञान।
तो ही सम्यक् मुक्ति हो, प्रकटे पद निर्वाण॥

जहां कल्पना प्रमुख हो, होवे झूठ प्रधान।
सत्य छुटे तो ना जगे, परम सत्य का ज्ञान॥

कदम कदम पर सत्य ही, अनुभव होता जाय।
ऐसा सतपथ धरम का, मंजिल तक पहुँचाय॥

सन्त वही जो चित्त को, निर्मल शांत बनाय।
साधे मंगल स्वयं का, जन मंगल सध जाय॥

केमिटो टेक्नोलॉजीज (प्रा.) लिमिटेड
८, मोहता भवन, ई-मोजेस रोड, वरली, मुंबई-४०० ०१८
फोनः २४९३ ८८९३, फैक्सः २४९३ ६१६६
Email: arun@chemito.net
की मंगल कामनाओं सहित

दूहा धरम रा

बोधि जग्यां ही बुद्ध है, वरना कोरो नाम।
बोधि बिना मुक्ती कठै? नाम न आवै काम॥

राग द्वेस अर मोह नै, भग्न कर्यां भगवान।
काम भोग कै कीट नै, कुण मानै भगवान?

दुस्मन मन का मैल है, हनन करै अरहन्त।
भव बन्धन नै काट कर, करै दुखां को अन्त॥

चालै सच कै पंथ पर, सच्चनाम तद होय।
काट कल्पना जाल नै, मुक्त भवां सूं होय॥

आस्त्रव सारा काटकर, हुवै अनास्त्रव सन्त।
अन्तर की गांठ्यां खुलै, मैत्री जगै अनन्त॥

तथता कै पथ जो चलै, सही तथागत सोय।
बांटै इमरत धर्म को, महा कारुणिक होय॥

एक साधक

की मंगल कामनाओं सहित

'विपश्यना विशोधन विन्यास' के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादकः राम प्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३, दूरभाष : (०२५५३) २४४०८६, २४४०७६.
मुद्रण स्थान : अक्षर चित्र प्रिंटिंग प्रेस, ६९- बी रोड, सातपुर, नाशिक-४२२००७.

वार्षिक शुल्क रु. ३०/-, US $ 10, **आजीवन शुल्क** रु. ५००/-, US $ 100. **'विपश्यना' रजि. नं. १९१५६**/७१. Regn. No. **LII/REN/RNP-46/2006-08**

Licenced to post w**ithout Prepayment of postage** -- Licence number-- **LII/RNP-WPP-03**
Posting day- **Purnima of Every Month,** Posted at **Igatpuri-422403,** Dist. Nashik (M.S.)

If not delivered please return to:-
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२४०३
जिला-नाशिक, महाराष्ट्र, भारत
फोन : (०२५५३) २४४०७६, २४४०८६
फैक्स : (०२५५३) २४४१७६
e-mail: info@giri.dhamma.org
Website: www.vri.dhamma.org